हमें कैसे पता चला

लेज़र्स

के बारे में?

लेखक: आइज़क एसिमोव

चित्रकार: एरिका कोर्स

अनुवादक: अशोक गुप्ता

हमें कैसे पता चला

लेज़र्स

के बारे में?

आखिर प्रकाश की यह कैसी अद्भुत किरण है जो सुपर-मार्केट में वस्तुओं के दाम भी पढ़ सकती है और ख़राब आँखों को ठीक भी कर सकती है? यह प्रकाश की कैसी किरण है जो स्टील में छेद भी कर सकती है और कागज़ पर नाज़ुक सी फोटो भी छाप सकती है?

१९५० के दशक में मैक्स प्लैंक के क्वांटम-सिद्धांत, आइंस्टाइन की नई सोच, और चार्ल्स टाउन के प्रयोगों ने प्रकाश की इस शक्तिशाली किरण तक पहुचने का मार्ग बनाया.

प्रकाश सामान्य रूप से इधर-उधर बिखर जाता है. आवश्यकता थी उसे एक जगह केंद्रित करने की. फिर एक विशेष वेवलेंग्थ को उत्तेजित करके शक्तिशाली और सीधा करने की. एक ऐसे उपकरण की रचना की गई जो यह सब संभव कर सके लेज़र के लिए.

यह सब कैसे हुआ, एक रोमांचकारी कहानी है. लेज़र की खोज में लगे वैज्ञानिकों को प्रकाश के बारे में भी काफी ज्ञान प्राप्त हुआ.

इस पुस्तक में आपको लेज़र (LASER) जो कि (Light Amplification by Stimulate Emission of Raditation लाइट एम्प्लीफिकेशन बाइ इस्ट्युमुलेट एमिसन ऑफ़ रेडिएशन का संछिप्त रूप है) की खोज और उसके आश्चर्यजनक उपयोगों के बारे में पता लगेगा. लेज़र के और क्या उपयोग हो सकते हैं -- भविष्य ही जानता है.

पुस्तक के अध्याय

१. प्रकाश की लहरें
२. विकिरण और ऊर्जा
३. मेज़र्स
४. लेज़र्स
५. लेज़र्स के उपयोग

१. प्रकाश की लहरें

प्रकाश छोटी-छोटी लहरों के प्रवाह से बनता है. एक इंच में लगभग पचास हज़ार प्रकाश की लहरें समां सकती हैं! इसका अर्थ है कि एक लहर की लम्बाई १ / ५०००० इंच हुई. इसे वेव-लेंग्थ या लहर की लम्बाई कहते हैं. इस विषय पर और आगे बढ़ने से पहले, वेव-लेंग्थ या लहर की लम्बाई को इंचों के अलावा दूसरे पैमाने में नापने के बारे में बात करें. अमेरिका में आम व्यक्ति लम्बाई नापने के लिये इंचों का प्रयोग करता है. परन्तु अन्य देशों में मीटर का प्रयोग किया जाता है. हालांकि अमेरिका में वैज्ञानिक और देशों की तरह मीटर का ही प्रयोग करते हैं.

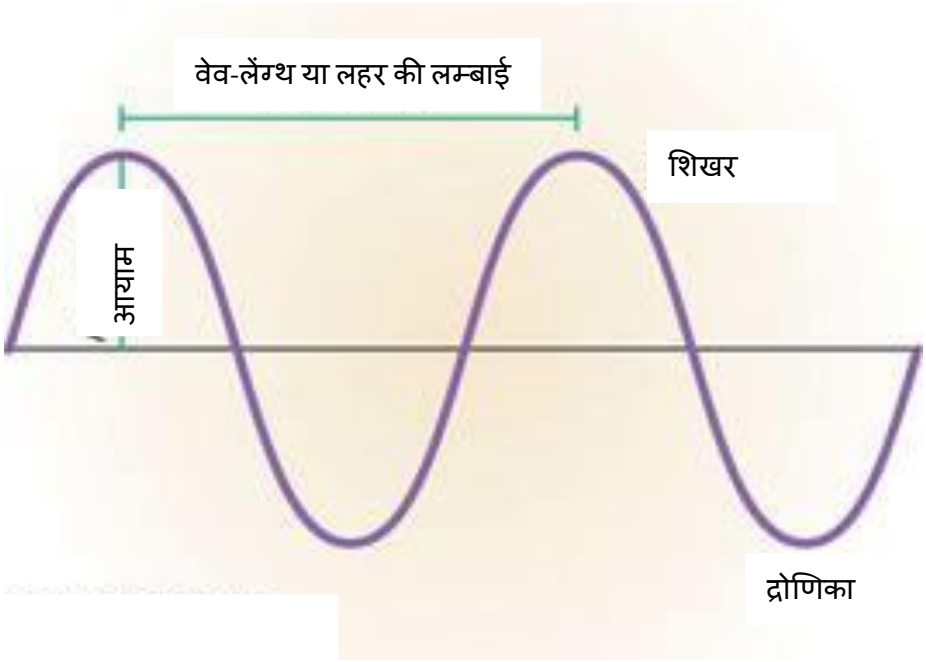

एक मीटर में ३९.३७ इन्चें या लगभग ३.२८ फीट होते हैं. यह काफ़ी लम्बी दूरी है. जिस तरह हम गज को फुटों में और फुटों को इंच में विभाजित कर सकते हैं, उसी तरह मीटर को भी छोटी इकाइयों (यूनिट्स) में बांटा जा सकता है. एक

गज में ३ फीट और एक फुट में १२ इंच होते हैं. एक मीटर को १० , १०० , या १००० भागों में विभाजित किया जाता है. इस कारण से मैट्रिक-पद्धिति फुट-पोंड-इंच से ज्यादा उचित महसूस होती है.

अतः मैट्रिक-पद्धिति में लम्बाई नापने के लिये:
१ सेंटी-मीटर = १/१०० मीटर या लगभग २/५ इंच
(१ सेंटी-मीटर = मीटर का १०० वां हिस्सा या एक इंच का २/५ वां हिस्सा)
१ मिली-मीटर = १/१००० मीटर या लगभग १ /२ ५ इंच
१ माइक्रो-मीटर = १/१००० मिली-मीटर या एक मीटर का १०-लाखवां हिस्सा या मीटर का मिलियंथवां हिस्सा
१ नैनो-मीटर = १/१००० माइक्रो-मीटर या एक मीटर का १००- करोड़वां हिस्सा या मीटर का बिलियंथवां हिस्सा

प्रकाश की एक लहर लगभग ५०० नैनो-मीटर लम्बी होती है. जो कि लगभग १/५०००० इंच के बराबर है. वैज्ञानिक इंचों के बजाय नैनो-मीटर का ही प्रयोग करते हैं.

ध्यान रहे कि प्रकाश की हर लहर की लम्बाई (वेव-लेंग्थ) एक बराबर नहीं होती. कोई थोड़ी लम्बी होती है और कोई थोड़ी छोटी. लम्बी-छोटी की पहचान हम प्रकाश के रंग से पता लगा सकते हैं.
प्रकाश की लम्बी से लम्बी लहरें हमें लाल रंग की दिखती हैं. इनकी लम्बाई ७८० नैनो-मीटर होती है. छोटी से छोटी लहरें हमें गहरी-बैगनी (वायलेट) रंग की दिखती हैं. उनकी लम्बाई होती है ३९० नैनो-मीटर. इन दोनों के बीच होते हैं अलग-अलग रंग जैसे नारंगी, पीला, हरा, और नीला. हर रंग की लहर छितरकर एक दूसरे में मिल जाती हैं -- उनमें स्पष्ट विभाजन नहीं दिखता. प्रकाश के विभिन्न रंगों की औसत वेव-लेंग्थ कुछ इस प्रकार होती है:

लाल रंग	७८० नैनो-मीटर
नारंगी	६०० नैनो-मीटर
पीला	५८० नैनो-मीटर
हरा	५२० नैनो-मीटर
नीला	४५० नैनो-मीटर
बैंगनी	४१० नैनो-मीटर

प्रकाश की किरण हवा से पानी में जाते समय मुड़ जाती है

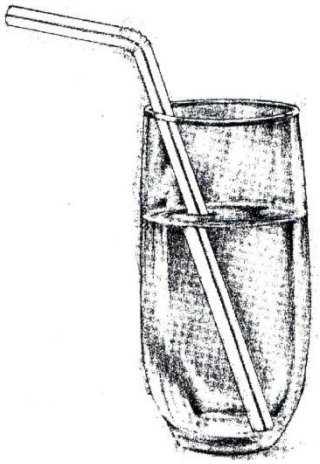

जब प्रकाश की किरण हवा से पानी या शीशे में प्रवेश करती है तो थोड़ी मुड़ जाती है (चित्र में देखिये). प्रकाश की वेव-लेंग्थ या लहर की लम्बाई जितनी कम होगी, वह उतनी ही अधिक मुड़ेगी. सूर्य की किरण में प्रकाश के सब रंग मिले होते हैं. जब सूर्य की किरण हवा में उपस्थित पानी के कणों से गुजरती है तब विभिन्न रंग अपनी वेव-लेंग्थों के हिसाब से अलग-अलग मात्र में मुड़कर एक दूसरे से अलग दिखाई देते हैं -- बैंगनी रंग सबसे ज्यादा मुड़ता है और लाल रंग सबसे कम. आकाश में इंद्र-धनुष का यही रहस्य है. वायुमण्डल में उपस्थित पानी की बूंदों ने सूर्य की किरणों को अपनी-अपनी वेव-लेंग्थों के हिसाब से मोड़ दिया और हमें दिखाई दे रहा है इंद्र-धनुष के आकर का एक रंगीन पट्टा जिसमें रंग एक दूसरे में मिलते हुए से हैं.

आँखों से देखे जाने वाले प्रकाश की वेव-लेंग्थ

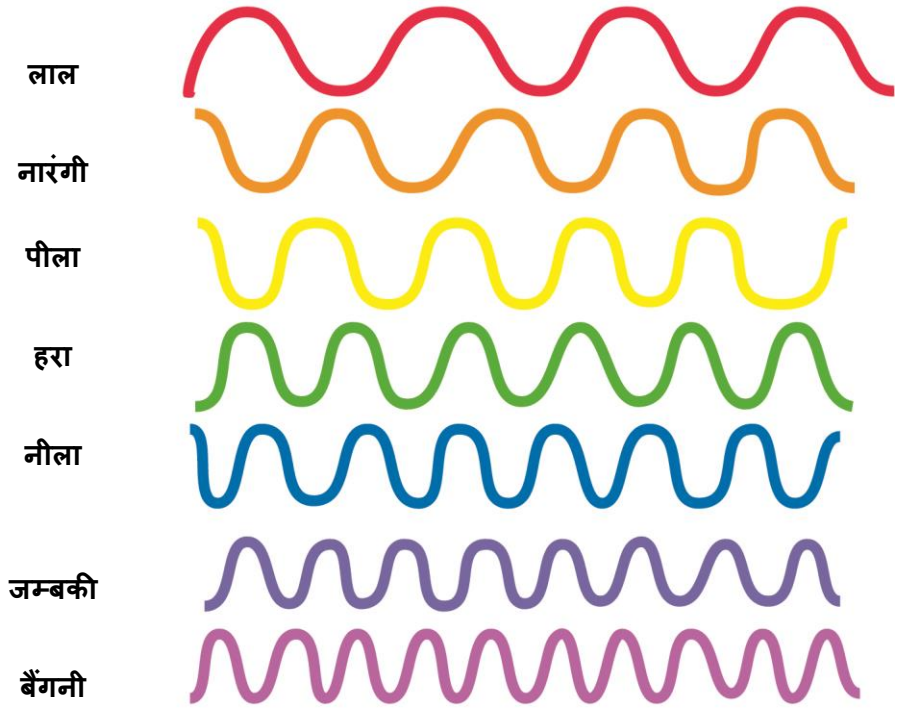

लेकिन प्रकाश की ये वेव-लेंग्थें वही हैं जिन्हें हम अपनी आँखों से देख सकते हैं. प्रकाश की ऐसी भी लहरें हैं जिनकी वेव-लेंग्थ ७८० नैनो-मीटर से भी अधिक है. परन्तु हमारी आँखें उन्हें देख नहीं सकती. यह प्रकाश की उन लहरों के लिए भी सत्य है जिनकी वेव-लेंग्थ ३९० नैनो-मीटर से भी कम है. ऐसी अत्यंत लम्बी और छोटी प्रकाश की लहरें वास्तव में होती हैं -- सिर्फ हम उन्हें देख नहीं सकते.

जर्मनी में पैदा हुए, ब्रिटेन के वैज्ञानिक विलियम हर्शेल (William Herschel १७३८ - १८२२) ने १८०० में अत्यंत लम्बी वेव-लेंग्थ वाली प्रकाश की लहरों की खोज की. इन को इंफ्रा-रैड यानी कि "लाल रंग से नीचे वाली" लहर कहा गया. इंफ्रा-रैड किरणों की वेव-लेंग्थ ७८० नैनो-मीटर से लेकर एक-करोड़ नैनो-मीटर या एक सेंटी-मीटर तक हो सकती है. १८०१ में जर्मनी के वैज्ञानिक विलिहेल्म रिटर (१७७६-१८१०) ने अत्यंत छोटी वेव-लेंग्थ वाली प्रकाश की लहरों की खोज की. इनको अल्ट्रा-वॉयलेट "बैंगनी रंग के पर वाली" लहर कहा गया. अल्ट्रा-वॉयलेट किरणों की वेव-लेंग्थ ३९० नैनो-मीटर से लेकर १० नैनो-मीटर तक हो सकती है.

लहरों की लम्बाई (वेव-लेंग्थों) का क्या कोई अंत है? कितनी सूक्ष्म हो सकती हैं ये? कितनी लम्बी?

१८७३ में ब्रिटेन के वैज्ञानिक जेम्स क्लर्क मैक्सवेल (James Clerk Maxwell १८३१-१८७९) ने यह प्रदर्शित किया की विद्युत (electricity) और चुम्बकत्व (magnetism) एक ही घटना को समझने के दो तरीके हैं. और उन्होंने इसे नाम

दिया विद्युतीय-चुम्बकत्व (electromagnetism) का. जिन चीजों में विद्युत प्रवाहित होती है या जिनमें चुम्बक का गुण है वो अपने चारों तरफ विद्युत-चुम्बकीय (electro-magnetic) क्षेत्र पैदा करते हैं. यह विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र पैदा करता है विद्युत-चुम्बकीय विकिरण (electro-magnetic radiation) को -- प्रकाश की किरणें जिन्हें हम देख सकते हैं और इंफ्रा-रैड एवं अल्ट्रा-वॉयलेट किरणें जिन्हें हम देख नहीं सकते. मैक्सवेल का कहना था कि इस तरह के विकिरण (रेडिएशन) की वेव-लेंग्थ हज़ारों मीटर से लेकर एक नैनो-मीटर के छोटे-से-छोटे भाग के बराबर कुछ भी हो सकती है.

जर्मनी के वैज्ञानिक हाइनरिक रूडोल्फ हर्ट्ज़ (Heinrich Rudolf Hertz १८५७-१८९४) ने १८८८ में अत्यंत लम्बी वेव-लेंग्थ वाली विकिरण (रेडिएशन) की लहरों की खोज की. इन लहरों को रेडियो-वेव कहा गया. इनकी लम्बाई हज़ारों मीटर की हो सकती है. अमरीकी नापने की पद्धिति के हिसाब से कई मील लम्बी!

सबसे छोटी लम्बाई की रेडिओ-वेव, जो इंफ्रा-रेड से थोड़ी बड़ी हों, माइक्रो-वेव कहा जाता है. इनकी लम्बाई १ मिली-मीटर से लेकर १५० मिली-मीटर तक होती है. (इंचों में: १/२५ इंच से ६" इंच तक).

१८९५ में जर्मनी के एक और वैज्ञानिक विलहेल्म कोनरेड रोइंटगेन (Wilhelm Kon-rad Roentgen १८४५-१९२३) ने अत्यंत छोटी वेव-लेंग्थ के विकिरण की खोज की. उसने इसे एक्स-रे (X-Ray) कहा. इसकी वेव-लेंग्थ १० नैनो-मीटर से १/१००० नैनो-मीटर तक हो सकती है.

एक साल बाद, फ़्रांस के वैज्ञानिक एन्टोइन हैनरी बैह्क्रेल (Antoine Henri Becquerel १८५२-१९०८) ने ढूंढ़ निकाला कि कुछ तत्व जैसे कि यूरेनियम लगातार विकिरण करते रहतें हैं. फ़्रांस के ही एक दूसरे वैज्ञानिक पॉल उलरिच वीयार्ड (Paul Ulrich Villard १८६०-१९३४) ने पता लगाया कि यूरेनियम से निकले विकिरण में कुछ ऐसी भी किरणें होती हैं जिनकी वेव-लेंग्थ एक्स-रे से भी कम है. उन्होंने इसका नाम गैम्हा-रे (Gamma Ray) दिया जिनकी वेव-लेंग्थ १ / १-लाख नैनो-मीटर और उससे भी कम थी.

नीचे के चित्र में विभिन्न विद्युत-चुम्बकीय विकिरण की सूची दी गई है -- सबसे लम्बी से लेकर सबसे छोटी वेव-लेंग्थ तक.

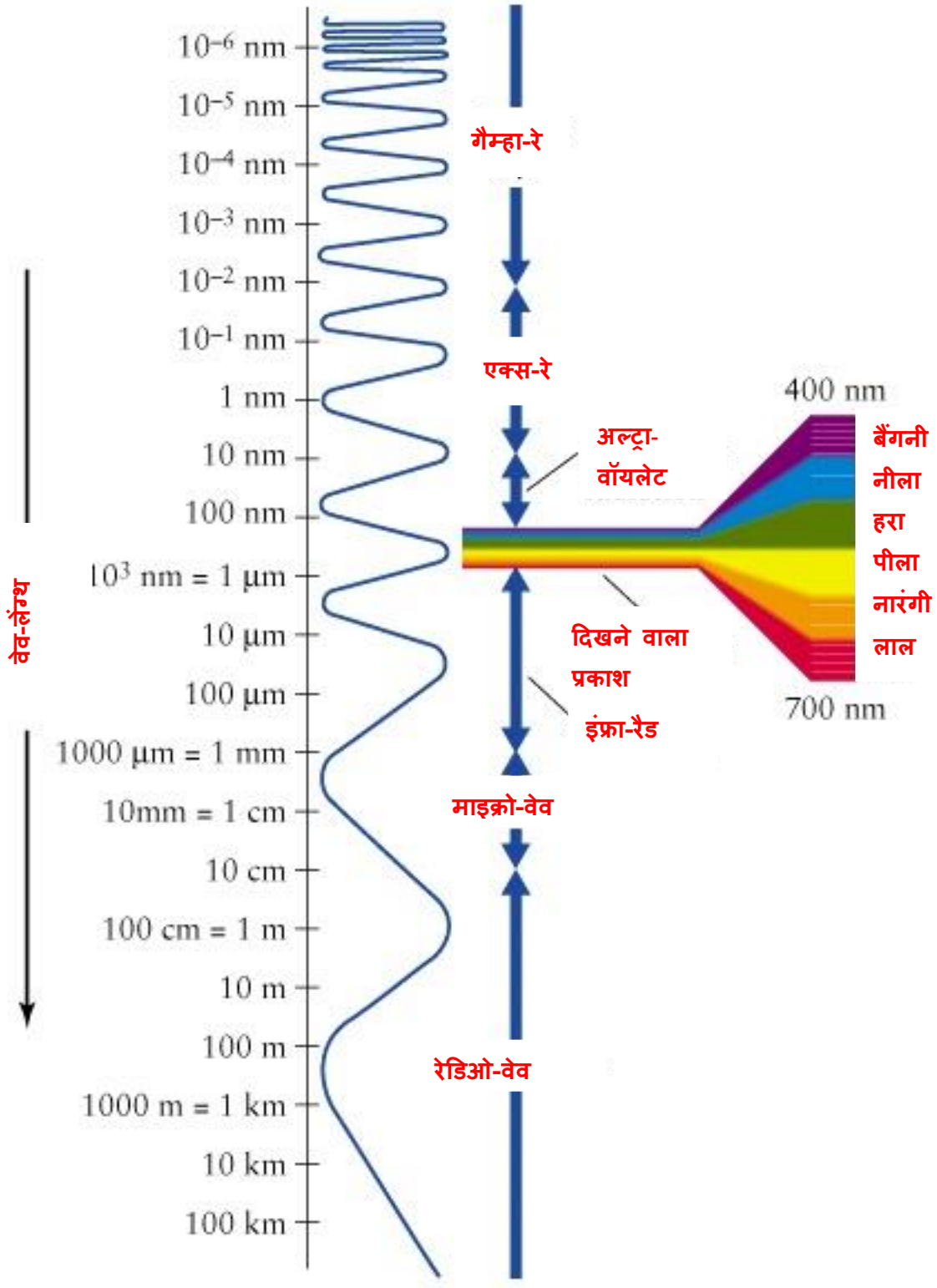
10^{-6} nm
10^{-5} nm
10^{-4} nm
10^{-3} nm
10^{-2} nm
10^{-1} nm
1 nm
10 nm
100 nm
10^3 nm = 1 µm
10 µm
100 µm
1000 µm = 1 mm
10mm = 1 cm
10 cm
100 cm = 1 m
10 m
100 m
1000 m = 1 km
10 km
100 km
गैम्हा-रे
एक्स-रे
अल्ट्रा-
वॉयलेट
400 nm
बैंगनी
नीला
हरा
पीला
नारंगी
लाल
700 nm
दिखने वाला
प्रकाश
इंफ्रा-रैड
माइक्रो-वेव
रेडिओ-वेव
तरंग लंबाई

२. विकिरण और ऊर्जा

प्रकाश ऊर्जा का ही एक स्वरुप है. कोई भी चीज जिससे हम काम ले सकते हैं, ऊर्जा कहलाती है; और प्रकाश द्वारा हम काम ले सकते हैं.

पानी की धारा की तरह ऐसा लगता है कि प्रकाश की किरणों से भी लगातार ऊर्जा बह रही हो. और ऐसा भी लगता है कि जैसे कि हम ऊर्जा को छोटे-छोटे टुकड़ों में भी निरन्तर बांट सकते हैं. पानी की धारा भी कुछ एसी ही लगती है. हम यह भी जानते हैं कि पानी छोटे-छोटे परमाणुओं से बना होता है जो इतने सूक्ष्म होते हैँ कि हम उन्हें अपनी आँखों से नहीं देख सकते.

पानी, जो नन्हे-नन्हे परमाणुओं से मिलकर बनता है, परन्तु उसे एक स्थिर धारा कि तरह उड़ेला जा सकता है तो क्या ऊर्जा भी इसी तरह किसी चीज के छोटे-छोटे टुकड़ों से बनी हो सकती है?

सन १९०० में जर्मन वैज्ञानिक मैक्स कार्ल अर्नस्ट प्लैंक (Max Karl Ernst Planck १८५८-१९४७) इसी प्रश्न के बारे में सोच रहा था. वह अध्यन कर रहा था कि गर्म वस्तुओं से किस तरह से विभिन्न वेव-लेंग्थों की विद्युत-चुम्बकीय विकिरण निकलते हैं. वह जानना चाहता था कि कुछ वेव-लेंग्थों के विकिरण दूसरी वेव-लेंग्थों के विकिरण से ज्यादा क्यों निकलते हैं.

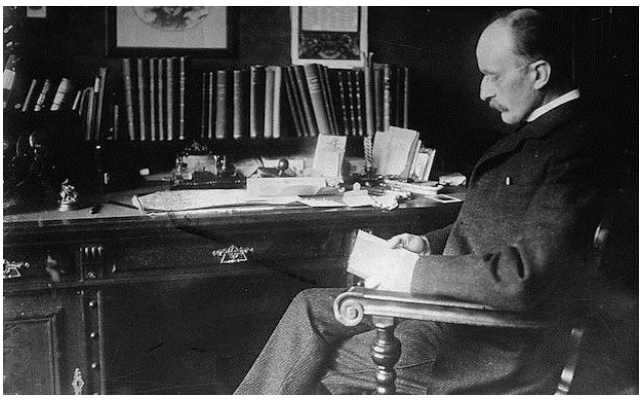

मैक्स प्लैंक अध्यन करते हुए

कई वैज्ञानिकों ने यह समझाने का प्रयास किया कि गर्म वस्तुओं से किस प्रकार विभिन्न वेव-लेंग्थों के विकिरण निकलने चाहिये. परन्तु उनके द्वारा दी गयी व्याख्या वास्तविकता को पूर्ण रूप से वर्णित न कर सकी. और जो व्याख्या वास्तविकता को पूर्ण रूप से वर्णित न कर सके वो किस काम की!

वैज्ञानिकों की व्याख्या का आधार था कि ऊर्जा, पानी की तरह, लगातार धारा जैसी प्रवाहित होती है न कि छोटे-छोटे टुकड़ों में. प्लैंक ने सोचा कि अगर ऊर्जा का प्रवाह छोटे-छोटे टुकड़ों में हो तो क्या होगा?

प्लैंक ने जब इस तरह सोचना शुरू किया तो वह यह समझाने में सफल हुआ कि गर्म पदार्थ से किस तरह अलग-अलग वेव-लेंग्थों के विकिरण सम्भव है. उसकी व्याख्या वास्तविकता को पूर्ण रूप से वर्णित कर सकी. प्लैंक की व्याख्या को क्वांटम-सिद्धांत कहा गया. प्लैंक का अगला प्रश्न था -- इन छोटे-छोटे

टुकड़ों में कितनी उर्जा है? प्लैंक ने पाया कि हर टुकड़े (chunk) में बहुत थोड़ी सी ऊर्जा है. शायद यही कारण था कि वैज्ञानिकों ने यह महसूस ही नहीं किया कि ये छोटे-छोटे टुकड़े वास्तव में होते भी हैं. प्लैंक को १९१८ में इस शोध के लिये नोबेल-पुरुस्कार से सम्मानित किया गया.

हर छोटे टुकड़े को फोटोन कहा गया. प्लैंक ने यह भी पता लगाया कि अलग-अलग वेव-लेंग्थों के विद्युत-चुम्बकीय विकिरण के फोटोन में अलग-अलग मात्रा में ऊर्जा होती है. वेव-लेंग्थ जितनी कम हो, उसके फोटोन मैं ऊर्जा उतनी ही अधिक. उदाहरण के तौर पर, बैंगनी रंग के प्रकाश की वेव-लेंग्थ लाल रंग से लगभग आधी होती है. इसका अर्थ यह हुआ कि बैंगनी प्रकाश के फोटोन लाल रंग के प्रकाश के फोटोन से दुगने शक्तिशाली होंगे. अतः बैंगनी प्रकाश अधिक काम करने की क्षमता रखता है.

अगर हम यह भी मानलें कि किसी लाल रंग के प्रकाश-सतम्भ में उतनी ही टोटल ऊर्जा है जितनी कि एक बैंगनी प्रकाश-स्तम्भ में, परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि बैंगनी प्रकाश के फोटोन अधिक शक्तिशाली होंगे. इस बात को इस तरह समझा जा सकता है. मानलीजिये कोई आप पर एक किलो पाउडर फैंकता है. आप पर इसका कुछ असर न होगा. अगर कोई आप पर एक किलो के कंकड़ फेंके तो आप हर कंकड़ को महसूस करेंगे. अगर कोई एक किलो का पथ्थर फेंकें तो निश्चित्त ही आपको बुरी तरह चोट लगेगी. ध्यान रहे, इन तीनों उदाहरणों में पत्थरों का पूर्ण वजन एक किलो था. परन्तु यह एक किलो पाउडर, कंकड़, और ठोस पत्थर होने के कारण इसका असर आपके ऊपर अलग-अलग हुआ.

***

प्रकाश की किरणें क्या काम कर सकतीं हैं? एक काम प्रकाश की किरणें फोटो फ़िल्म पर लगे कैमीकल को काला करने का करती हैं जिसके कारण हम फोटो खींच सकते हैं. लाल रंग के प्रकाश के फोटोन इतने छोटे और दुर्बल होते हैं कि उनका फोटो-फिल्म पर कोई असर नहीं पड़ता. यही कारण है कि फोटो-फिल्म लाल प्रकाश में डैवलप की जाती है. फोटो डैवलप करते समय, लाल प्रकाश में आप देख सकते हैं कि आप क्या कर रहे हैं परन्तु फोटो-फिल्म पर इस प्रकाश का कोई असर नहीं होता. कम वेव-लेंग्थ का प्रकाश फिल्म को तुरंत काला कर देगा.

प्रकाश की वो किरणें और भी कम शक्तिशाली होंगी जिनकी वेव-लेंग्थ लाल-प्रकाश से अधिक है. इंफ्रा-रेड किरणें साधारण प्रकाश से कम शक्तिशाली हैं. माइक्रोवेव में और भी कम शक्ति है. और रेडियो-वेव में सबसे कम.

वर्ण-क्रम (spectrum) के दूसरी ओर इसका एकदम उल्टा है. अल्ट्रा-वॉयलेट किरणों की वेव-लेंग्थ साधारण प्रकाश से कम है -- अतः ये किरणें अधिक शक्तिशाली हैं. एक्स-रे में और भी अधिक शक्ति है. और गैम्हा-किरणों में सबसे अधिक शक्ति.

जैसे-जैसे किरणों की वेव-लेंग्थ कम होती जाती है, हम उनकी शक्ति महसूस कर सकते हैं. रेडियो-तरंगें हमारे चारों तरफ हैं क्योंकि रेडियो और टीवी स्टेशन उन्हें हर समय प्रसारित करते रहते हैं. इनमें इतनी कम ऊर्जा होती है कि इनसे हमें कोई नुकसान नहीं पहुंचता। दूसरी ओर, सूर्य की किरणें, हमारी त्वचा को काला कर सकती हैं -- जला भी सकती हैं.

सूर्य की किरणें, विशेषकर कम वेव-लेंग्थ वाली अल्ट्रा-वॉयलेट किरणें, अगर लम्बे समय तक हमारी त्वचा पर पड़ती रहें तो हमें त्वचा का कैंसर भी हो सकता है. एक्स-रे और गैम्हा-किरणें तो और भी खतरनाक हैं. चिकित्सक और दांतों के डाक्टर एक्स-रे का प्रयोग शरीर की हड्डियों और तंतु-रचना (tissues) का अध्यन करने के लिए करते हैं. अध्यन के लिए एक्स-रे को शरीर पर बहुत ही थोड़ी देर के लिए डाला जाता है.

***

जब कोई वस्तु अपने से ठंडी वस्तु द्वारा चारों ओर से घिरी हो तो गर्म वस्तु विद्युत-चुम्बकीय विकिरण निकालती है और धीरे-धीरे उसका तापमान गिरने लगता है. और जब कोई वस्तु अपने से गर्म वस्तु द्वारा चारों ओर से घिरी हो तो इसका उल्टा होता है और ठंडी वस्तु का तापमान बढ़ने लगता है. विद्युत-चुम्बकीय विकिरण हमेशा गर्म जगह से ठंडी जगह जाता है और दोनों जगह के तापमान को अंत में बराबर कर देता है.

सृष्टि में हर जगह फोटोन एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर जा रहे हैं. कुछ फोटोन तो हर पल निकलते रहते हैं. इसे हम विकिरण का प्रवाह (emission of radiation) कहते हैं.

फोटोन वस्तुओं में से विभिन्न वेव-लेंग्थों में निकलते हैं. कुछ वेव-लेंग्थ दूसरे की अपेक्षा अधिक मात्रा में होती हैं. ज्यादा और कम वेव-लेंग्थों के फोटोन कम मात्रा में निकलते हैं. अक्सर बीच की वेव-लेंग्थों के फोटोन ही सबसे अधिक मात्रा में होते है. बहुत ज्यादा और बहुत कम वेव-लेंग्थ बहुत ही कम मात्रा में पायी जातीं हैं. यह सब क्वांटम-सिद्धांत द्वारा समझाया जा सकता है.

मानलीजिये आप एक वस्तु को गर्म करना शुरू करें. जैसे-जैसे उसका तापमान बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे वह अधिक फोटोन निकालता जायगा. और उसके द्वारा पैदा किये गये फोटोन की ऊर्जा भी बढ़ती जायगी. इसका मतलब यह हुआ कि गर्म वस्तुओं से निकले फोटोन की वेव-लेंग्थ ठंडी वस्तुओं के फोटोन से कम होगी (क्योंकि ज्यादा ऊर्जा का मतलब कम वेव-लेंग्थ). अतः बहुत ठन्डे पदार्थ रेडियो-वेव या माइक्रोवेव के फोटोन निकालेंगे. मनुष्य के तापमान तक पहुँचने पर पदार्थ अधिकतर इंफ्रा-रेड के फोटोन देगा.

उबलते हुए पानी की कैटिल से बहुत मात्रा में इंफ्रा-रेड किरणें निकलती हैं. अगर आप अपने हाथ को कैटिल के पास से जायँ (कैटिल को छुएं न) तो आप किरणों को गरमाहट के रूप में महसूस कर सकते

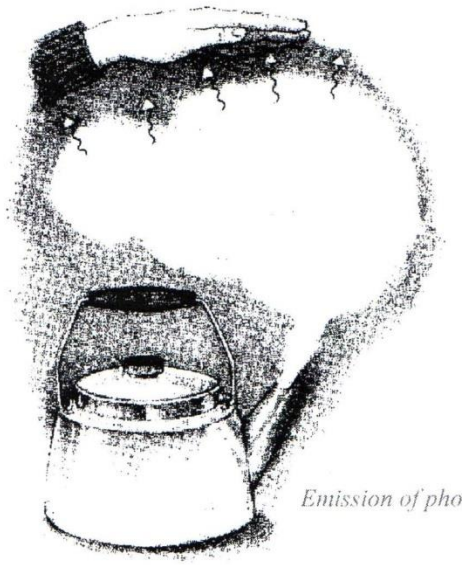

वस्तु को गर्म करने से निकलते फोटोन

हैं. चूंकि आपका हाथ कैटिल से ठंडा है, वो इंफ्रा-रेड फोटोन को अपने में समां लेता है और इससे हाथ गर्म होने लगता है.

अगर आप किसी चीज को जोर-शोर से गर्म करना शुरू करें (जैसे लोहार गर्म करता है लोहे को) तो आखिर में दृष्टि गोचर प्रकाश के कुछ फोटोन भी निकलते हैं. ज्यादातर ये अधिक वेव-लेंग्थ के होंगे और पदार्थ गर्म-लाल (red-hot) रंग का दिखाई देगा. अगर हम पदार्थ को और गर्म करते जांय तो दृष्टि गोचर प्रकाश के कम वेव-लेंग्थ वाले फोटोन भी निकलना शुरू कर देंगे और पदार्थ गर्म-सफेद (white-hot) दिखाई देने लगेगा. सूर्य की सतह गर्म-सफ़ेद (white-hot) दिखाई देती है. अगर आप लकड़ियों के ढेर में आग लगायें तो उसकी लपटें पीली या नारंगी दिखेंगी क्योंकि तापमान सूर्य से कम है.

किसी भी पदार्थ में परमाणु और उनके संयोग में ऊर्जा होती है. वे समीक्षा घुमते रहते हैं -- एक दूसरे को धक्का देते रहते हैं. इस धक्का-मुक्की से फोटोन एक परमाणु से दूसरे में चले जाते हैं और कुछ बाहर भी निकल आते हैं.

आमतौर से, हर परमाणु एक ख़ास वेव-लेंग्थ के फोटोन निकालता है जो एक खास दिशा में चलते हैं. दूसरा परमाणु दूसरी वेव-लेंग्थ का फोटोन निकालता है जो अलग दिशा में चलते हैं. इसका मतलब यह है कि किसी भी पदार्थ से फोटोन अलग-अलग वेव-लेंग्थ और दिशा में बाहर निकलते रहते हैं. चाहे वो पदार्थ सूर्य का प्रकाश हो, या लकड़ी के ढेर में लगी आग, या मोमबत्ती, या बिजली का बल्ब, या उबलते पानी की कैटिल. इसके अलावा क्या आप कोई और तरीका सोच सकते हैं फोटोन निकालने का?

३. मेज़र्स

१९१७ में एक जर्मन वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन (Albert Einstein १८७९-१९५५) ने फोटोन निकलने के तरीके पर विचार किया. उसे ऐसा लगा कि कोई विशेष परमाणु या परमाणुओं का समूह किसी सही आकार के फोटोन को पकड़कर ऊर्जा के एक ऐसे स्तर पर भेज सकता है जो उसकी रचना के हिसाब से ठीक बैठता हो. इस तरह एक परमाणु या फिर परमाणुओं के समूह को उत्तेजित किया जा सकता है जो शीघ्र या थोड़ी देर बाद इकट्ठी की हुई अतरिक्त (एक्स्ट्रा) ऊर्जा को निकाल देगा और एक फोटोन पैदा करेगा बिलकुल वैसा जिसने परमाणु को शुरू मैं उत्तेजित किया था. अलग अलग परमाणु उन फोटोन को अलग अलग समय पर और दिशाओं में निकालेंगे.

कल्पना कीजिये कि किसी पदार्थ के सब परमाणुओं को एक साथ उत्तेजित कर दिया जाय. अगर ऐसा हो सके तो उन सब में अतरिक्त ऊर्जा होगी. मानलीजिये एक सही आकार का फोटोन उन्हें उत्तेजित करने के लिये आता है और किसी एक परमाणु से टकराता है. परन्तु वह उसे उत्तेजित न कर पायेगा क्योंकि परमाणु पहले से ही उत्तेजित है. इसके बदले, वह परमाणु को अपने निजी एक्स्ट्रा फोटोन को बाहर निकालने के लिये मजबूर करेगा. परमाणु से निकलने वाला फोटोन बिल्कुल उस फोटोन के जैसा होगा जो उस परमाणु पर टकरा रहा है. और निकलने वाला फोटोन उसी दिशा में दौड़ेगा जिस में वार करने वाला फोटोन था.

अब दो फोटोन, दो और परमाणुओं से टकराकर दो और फोटोन पैदा करेंगे. इस तरह अब चार फोटोन, चार परमाणुओं से टकरायेंगे और आठ फोटोन पैदा करेंगे .... फिर १६, फिर ३२ .... इस तरह, आँख झपकने में लगे समय से भी कम में, करोणों, अरबों फोटोन पैदा हो जायेंगे, जिन सबकी वेवलेंग्थ एक बराबर है और जो सब एक दिशा में दौड़ेंगे. यह कोई साधारण रेडिएशन का उत्सर्जन (emission of radiation) नहीं है जो हम लकड़ी के ढेर में आग लगाने पर या सूर्य के प्रकाश में देखते हैं जिनमें से हर दिशा और हर वेवलेंग्थ के फोटोन निकलते रहते हैं. यह इस प्रकार का उत्सर्जन है जो उत्तेजित परमाणुओं पर सही आकार के फोटोन की चोट पड़ने पर होता है. फोटोन परमाणुओं को उत्तेजित करते हैं इसलिये इस प्रकार के उत्सर्जन को विकिरण का उत्तेजित उत्सर्जन (Stimulated Emission of Radiation) कहलाता है.

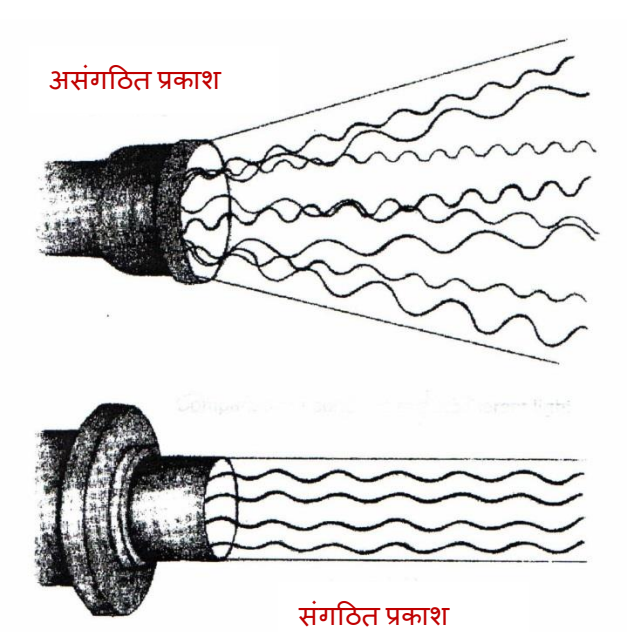

संगठित और असंगठित प्रकाश की तुलना

विशेष बात यह है कि यह उत्सर्जन एक फोटोन से शुरू होता है परन्तु अंत में मिलते हैं अनगिनित फोटोन. आप एक अकेले फोटोन को तो शायद न देख पायें, परन्तु जब ढेर सारे फोटोन एक साथ निकलते हैं तो वे छुपे नहीं रह सकते. इस तरह सिर्फ एक फोटोन विस्तृत हो कर ऊर्जा का बहुत बड़ा प्रदर्शन करने में सफल होता है -- यह हुआ विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन का विराट रूप (Amplification by Stimulated Emission of Radiation).

साधारण विकिरण में अलग-अलग वेवलेंग्थों के फोटोन सब दिशाओं में बिखर जाते हैं -- एक जगह केन्द्रित नहीं होते. चाहे आप एक लेंस या मुड़े हुए दर्पण का प्रयोग कर सब किरणों को एक दिशा में इकट्ठा करें, जैसे कि टॉर्च या कार की हेड-लाइट में करते हैं, प्रकाश फिर भी चारों तरफ बिखर ही जाता है. ऐसा प्रकाश असंगठित (incoherent)

एवं बहु-रंगी (polychromatic) यानीकि बहुत सारी वेवलेंग्थों वाला होगा. परन्तु विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन में सब वेवलेंग्थ बराबर होती हैं और यह एक-रंगीन (monochromatic) एक वेवलेंग्थ वाला होता है. सब फोटोनों के एक दिशा में चलने के कारण प्रकाश तितर-बितर नहीं होता -- संगठित (coherent) रहता है.

आइंस्टाइन एक सैद्धांतिक भौतिक शास्त्री था. इसका मतलब यह है कि उसने बिना किसी प्रयोग के सिर्फ अपने दिमाग और कागज-पेंसिल द्वारा यह पता लगाने की कोशिश की कि अगर प्लैंक का क्वांटम-सिद्धांत सही है तो क्या होना चाहिये? अगर हम यह मानें कि प्लैंक का क्वांटम-सिद्धांत सही नहीं है तो हमें प्रयोग द्वारा यह देखना चाहिये कि क्या वास्तव में विकिरण का उत्तेजित उत्सर्जन संभव है? हमें यह जाँच करनी होगी कि क्या वास्तविकता वही है जो सिद्धांत कहता है?

१९२८ में किये गये प्रयोगों से पता लगा कि विकिरण का उत्तेजित उत्सर्जन वास्तव में होता है और इस तरह का विकिरण सचमुच में संगठित (coherent) और एक-रंगीन (monochromatic) यानिकि एक वेवलेंग्थ का होगा.

अब चुनौती यह है कि इस तरह का संगठित विकिरण अधिक मात्रा में बनाया कैसे जाय? ऐसा लगता नहीं कि यह कोई आसान काम है. वैसे तो विकिरण हमारे चारों तरफ मौजूद है पर वह असंगठित और बिखरा हुआ है. अर्थात, साधारण विकिरण पैदा करना तो बहुत आसान है, परन्तु उत्तेजित विकिरण पैदा करना बहुत कठिन. उत्तेजित विकिरण पैदा करना इसलिये कठिन है कि जब आप परमाणुओं को उत्तेजित करते हैं तो वो फोटोन को बहुत देर तक अपने साथ नहीं रख पाते. हमें आवश्यकता है बहुत सारे परमाणुओं को एक साथ उत्तेजित करने की और उन्हें काफी देर तक उत्तेजित अवस्था में रखने की.

हालांकि वैज्ञानिकों को यह मालूम पड़ चुका था कि विकिरण का उत्तेजित उत्सर्जन संभव है पर किसी ने बहुत समय तक इस पर कोई काम नहीं किया.

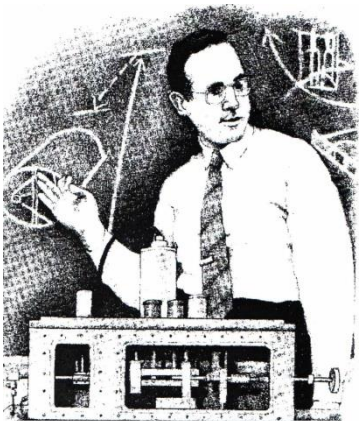

चार्ल्स टाउनेस अपनी अमोनिया मेजर समझाते हुए

तब १९५१ में एक अमरीकी वैज्ञानिक चार्ल्स हार्ड टाउनेस (Charles Hard Townes, जन्म १९१५) एक शक्तिशाली माइक्रोवेव बनाने की कोशिश कर रहे थे. उन्हें लगा कि माइक्रोवेव के फोटोन, जिनमें उसे रुचि थी, अमोनिआ गैस में आसानी से खप सकते हैं. अगर अमोनिआ के पर्याप्त मॉलीक्यूलों को उत्तेजित किया जा सके तो उसे शक्तिशाली माइक्रोवेव मिल सकती है.

टाउनेस को लगा कि सिर्फ गर्म करने से न तो अमोनिआ के मॉलीक्यूलों को उत्तेजित किया जा सकता है और न ही उन्हें उत्तेजित अवस्था में रखा जा सकता है. कोई और तरीका ढूढ़ना पड़ेगा; शायद

बिजली की करैंट से काम चले, या प्रकाश की किरण, या कोई रसायनिक क्रिया. किसी तरह अगर वह अमोनिआ के मॉलीक्यूलों को उत्तेजित कर सके तो उसे शक्तिशाली माइक्रोवेव की किरण मिल जायेगी.

टाउनेस और उसके विद्यार्थी दिसम्बर १९५३ में एक यंत्र बनाने में सफल हुए. इसके द्वारा अमोनिआ के मॉलीक्यूलों को उत्तेजित अवस्था में अपने एक्स्ट्रा फोटोन के साथ तब तक रखा जा सकता है जब तक कि सही आकार का फोटोन अंदर घुस कर सब को एक साथ मुक्त कर सके. चूंकि यह विस्तृत निसार माइक्रोवेव का था इसे मेज़र (माइक्रोवेव का विस्तार विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन द्वारा. MASER = Microwave Amplification by Stimulated Emission of Radiation) कहा गया.

लगभग उसी समय सोवियत यूनियन में दो वैज्ञानिक भी मेज़र बनाने में जुटे हुए थे. उनमें से एक था एलेक्जेंडर प्रोहोरोव (जन्म १९१६) और दूसरा था निकोलाई बैसोव (जन्म १९२२). १९६४ में टाउनेस और दोनों वैज्ञानिकों को नोबेल पुरुस्कार से सम्मानित किया गया.

शुरू में मेज़र थोड़ी ही देर के लिए माइक्रोवेव निकाल पाये. जैसे ही मॉलीक्यूल या परमाणुओं को उत्तेजित किया गया, कुछ ही क्षणों में फोटोन निकल गये और वो शांत हो गये. मॉलीक्यूलों को फिर से उत्तेजित करने की जुरूरत थी जिससे वे विकिरण उत्सर्जित कर सकें.

परन्तु १९५६ में एक डच-अमरीकी वैज्ञानिक निकोलस ब्लूमबर्गन (जन्म १९२०) को एक ऐसे मॉलीक्यूल को इस्तेमाल करने की सूझी जिसमें ऊर्जा के तीन स्तर हों -- सबसे कम उत्तेजित स्तर एक दम नीचे, थोड़ा उत्तेजित स्तर उससे ऊपर, और सबसे अधिक उत्तेजित स्तर उससे ऊपर.

अगर आप के पास इस तरह का ३-स्तर का मेजर हो तो आप मॉलीक्यूलों को पहले स्तर से तीसरे स्तर पर पहुंचा सकते हैं. एक सही आकार का फोटोन, मॉलीक्यूल को उत्तेजित कर और माइक्रोवेव निकाल कर उसे तीसरे स्तर से दूसरे स्तर पर गिरा देगा. मॉलीक्यूल फिर उत्तेजित होकर माइक्रोवेव निकाल कर पहले स्तर पर आजायेगा। परन्तु फोटोन फिर उन्हें तीसरे स्तर पर पहुंचा देंगे. एक तरह के फोटोन मॉलीक्यूलों को ऊर्जा के ऊपरी स्तर पर भेजेंगे और दूसरे उन्हें उत्तेजित करेंगे. इस तरह दोनों तरह के फोटोन, बिना एक दूसरे के काम में दखल दिये, मॉलीक्यूलों को उत्तेजित रखेंगे और मेजर लगातार निकलती रहेगी. ब्लूमबर्गन पहला वैज्ञानिक था जो एक “निरंतर-मेजर” बनाने में सफल हुआ. १९८१ में उसे अन्य वैज्ञानिकों के साथ नोबेल पुरुस्कार दिया गया.

याद रहे, मेजर एक एम्प्लीफायर है. मानलीजिये एक मेजर अंतरिक्ष में उपस्थित विकिरण के सम्पर्क में आता है. अगर उस समय कोई पर्याप्त ऊर्जा का फोटोन मेजर से टकराये तो वह मेजर से एक माइक्रोवेव किरण (beam) पैदा करेगा. वैज्ञानिकों को फोटोन की बजाय माइक्रोवेव किरण (beam) का पता लगाना कहीं ज्यादा आसान है. अतः खगोल शास्त्री, जो यह जानना चाहते हैं कि अंतरिक्ष में क्या हो रहा है, मेजर एक अति-संवेदनशील यंत्र हो सकता है.

हालांकि एक विशेष मेजर किसी खास ऊर्जा के ही फोटोन का पता लगा सकता है. परन्तु शीघ्र ही वैज्ञानिकों ने अलग-अलग तरह के मेजर बना लिये --- किसी ने एक गैस का प्रयोग किया और किसी ने दूसरी का. किसी ने ठोस-पदार्थ का प्रयोग किया. इस तरह अलग-अलग वेव-लेंग्थ की माइक्रोवेव को किसी न किसी मेजर से पता लगाया जा सका.

एक ध्यान रखने वाली बात है -- मेजर द्वारा पैदा हुई माइक्रोवेव किरण संगठित (coherent) होती है. इसका अर्थ है कि यह लम्बी दूरी चलने के बावजूद भी छितरती नहीं. इस तरह की माइक्रोवेव किरण को अगर शुक्र (वीनस) गृह की तरफ फेंका जाय तो बिना इधर-उधर छितरे हुए वह शुक्र (वीनस) गृह तक पहुँच जायगी और वहाँ से टकराकर कर पृथ्वी पर वापस आती हुई माइक्रोवेव किरण का पता लगाया जा सकता.

माइक्रोवेव प्रकाश की गति से चलती है. और हम जानते हैं प्रकाश की गति कितनी है. हम पृथ्वी से शुक्र (वीनस) गृह की दूरी माइक्रोवेव किरण को पृथ्वी से शुक्र (वीनस) गृह तक जाकर वापस आने के समय (जोकि कुछ मिनिट होगा) से पता लगा सकते हैं.

वास्तव में माइक्रोवेव का प्रयोग खगोलीय-वस्तुओं की पृथ्वी से दूरी नापने का सबसे अच्छा तरीका है. अब खगोलशास्त्री, पहले की अपेक्षा, गृहों और नक्षत्रों की पृथ्वी से दूरी एक दम ठीक से पता लगा सकते हैं.

शुक्र (वीनस) गृह हमेशा बादलों की मोटी तह से ढका रहता है. हम बढ़िया से बढ़िया दूरबीन (टेलीस्कोप) से भी बादलों के पार नहीं देख सकते. इसलिए अब तक किसी को यह भी मालूम न था कि शुक्र (वीनस) गृह की सतह कैसी होती है. किसी को यह भी मालूम न था कि शुक्र (वीनस) गृह किस गति से घूम रहा है और किस दिशा में. लेकिन माइक्रोवेव बादलों को काटती हुई शुक्र (वीनस) गृह की सतह से टकराकर फिर से बादलों को पार कर पृथ्वी तक पहुँच सकती है.

मेजर से भेजी गयी माइक्रोवेव किरण एक-रंगी (monochromatic) और एक वेवलेंग्थ की होती है. अगर शुक्र गृह अचल हो और उसकी सतह पूर्ण रूप से चिकनी हो तो उस पर पड़ने वाली माइक्रोवेव की किरण ज्यों के त्यों, वेवलेंग्थ में बिना किसी बदलाव के, वापस पृथ्वी पर आजायगी. परन्तु अगर शुक्र गृह घूम रहा है, यानी कि उसकी सतह स्थिर नहीं है, तो उस से टकराकर वापस आने वाली माइक्रोवेव की वेवलेंग्थ में बदलाव आजायगा. गृह जितनी तेजी से घूम रहा होगा, बदलाव उतना ही अधिक होगा. शुक्र गृह से टकराकर लौटी हुई माइक्रोवेव के अध्यन से, सन १९६२ में वैज्ञानिकों को उसके चक्कर काटने के तरीके और गति का पता चला. इससे पहले उन्हें इसका कोई ज्ञान न था.

अगर शुक्र गृह की सतह समतल न होकर उस पर पर्वत या खाइयाँ हों तो उसका असर भी टकराकर वापस लौटती हुई माइक्रोवेव पर पड़ेगा. माइक्रोवेव किरण का उपयोग कर शुक्र गृह की सतह पर ऊबड़-खाबड़ जगहों का पता लगाया गया. १९७८ में शुक्र गृह का चक्कर लगाने वाले एक अनुसन्धान यंत्र से माइक्रोवेव का प्रयोग कर शुक्र गृह की सतह का मानचित्र भी बना लिया गया.

माइक्रोवेव किरण शुक्र गृह से भी दूर पहुँच चुकी है. उन्होंने छू लिया है बुद्ध (Mercury) गृह, मंगल (Mars) गृह, सूर्य गृह, बृहस्पति (Jupiter) गृह को भी. १९८९ में टाइटन से टकराकर वापस आने वाली माइक्रोवेव का भी पता चला है. टाइटन, शनि (Saturn) गृह का एक बड़ा उपगृह (satellite) है. इसकी दूरी पृथ्वी से शुक्र गृह की दूरी से ३५-गुना है जबकि शुक्र गृह पृथ्वी के सबसे पास है.

एक माइक्रोवेव किरण को टाइटन पर फेंका गया जो बादलों को पार करता हुआ २ Va घंटों में वापस पृथ्वी पर लौट कर आयी और हमें टाइटन की सतह के बारे में पता लगा. ऐसा तीन बार अलग-अलग दिन किया गया. चूंकि उपगृह घूम रहा है, हमें टाइटन की सतह के विभिन्न हिस्सों की सूचना मिल सकी. पहले और तीसरे दिन मिली माइक्रोवेव किरण बहुत कमजोर थीं जैसे कि वो किसी द्रव्य से टकराकर लौटी हों. परन्तु दूसरे दिन वह काफी शक्तिशाली थीं जैसे कि वो किसी ठोस पदार्थ टकराकर वापस आयीं हों. ऐसा लगता है टाइटन पर पृथ्वी की तरह समुद्र और महाद्वीप हैं. पर इतना जरूर है कि टाइटन और पृथ्वी के समुद्र और महाद्वीप जिन पदार्थों के बने हैं वो एक दूसरे से बहुत अलग होंगे.

४. लेज़र्स

अगर आप एक जैसी वेव-लेंग्थ के मेजर बना सकते हैं जो माइक्रोवेव बीम (किरण) पैदा कर सकते हैं तो विद्युत-चुम्बकीय विकिरण की किरणें क्यों नहीं बना सकते जो कि माइक्रोवेव नहीं हैं? अगर ऐसे पदार्थ चुने जायें जिनमें ऊर्जा के स्तर एक दूसरे से काफी दूर हों तो आप शक्तिशाली विकिरण पैदा करने में सफल हो सकते हैं. ऐसे विकिरण की वेव-लेंग्थ बहुत कम होगी. इस तरह इंफ्रा-रेड बीम और यहाँ तक कि साधारण प्रकाश के बीम भी पैदा किये जा सकते हैं.

टाउनेस इस बारे में १९५८ में ही सोच रहा था कि ऐसा कौन सा पदार्थ इस्तेमाल किया जाय जो माइक्रोवेव के बजाय साधारण प्रकाश का बीम पैदा कर सके. प्रकाश पैदा करने वाले मेजर को "प्रकाशीय-मेजर" कहा जा सकता है.

परन्तु वैज्ञानिकों ने इसे दूसरा ही नाम दिया. उन्होंने माइक्रोवेव बीम की बजाय प्रकाश के बीम को लेज़र कहा (प्रकाश का विस्तार विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन द्वारा. LASER = Light Amplification by Stimulated Emission of Radiation).

मेज़र पैदा करता है माइक्रोवेव का संगठित एवं एक-रंगी बीम; और लेज़र पैदा करता है प्रकाश का संगठित एवं एक-रंगी बीम.

१९६० में अमरीकी वैज्ञानिक थिओडोर हेरॉल्ड मेमन (जन्म १९२७. Theodore Harold Maiman) लेजर बनाने में सबसे पहले सफल हुए. उन्होंने प्रयोगशाला में अल्युमिनियम-ऑक्साइड और क्रोमियम-ऑक्साइड के मिश्रण से रूबी की एक छड़ी बनाई. मिश्रण में उपस्थित क्रोमियम परमाणु पदार्थ को रूबी जैसा लाल रंग देता है. क्रोमियम परमाणुओं को उत्तेजित किया गया और जब वे गिरकर ऊर्जा के नीचे स्तर पर आये तो उनमें से ऐसी वैवलेंग्थ के फोटोन निकले जो लाल रंग के दिखाई दिये. छड़ी को उत्तेजित हो जाने के बाद एक सही वैवलेंग्थ के फोटोन को फिर से छड़ी पर डाला गया. जिससे उसी वैवलेंग्थ के और फोटोन पैदा हुये. जिससे एक गहरे लाल रंग का एक संगठित प्रकाश का बीम पैदा हुआ.

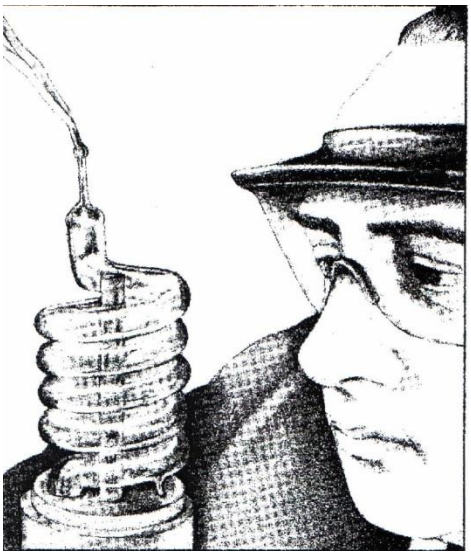

थिओडोर मेमन पहली रूबी-लेजर पर मनन करते हुए

शुरू में लेज़र से प्रकाश-बीम रुक-रुक कर निकला. प्रकाश-बीम निकालने के लिए उसे बार-बार उत्तेजित करना पड़ता. परन्तु १९६० के अंत तक एक ईरान में पैदा हुए वैज्ञानिक अली जवान (Ali Javan) ने नीऑन और हीलियम गैस के मिश्रण का प्रयोग कर एक निरंतर प्रकाश का लेज़र बनाया.

१९६० से पहले, वैज्ञानिकों ने कभी संगठित-एकरंगी प्रकाश नहीं देखा था. जो भी प्रकाश उन तक पृथ्वी पर उपस्थित स्त्रोतों से या फिर सूर्य और सितारों से पहुंचा वह सब असंगठित एवं बहुरंगी था.

१९६० से वैज्ञानिक खगोल वस्तुओं से संगठित प्रकाश के निकलने का पता लगा सके. दो सितारों के बीच गैस के छिछले बादल होते हैं जिन्हें इंटर-स्टैलर बादल कहते हैं. इन गैसों के परमाणु कभी-कभी आस-पास के सितारों के प्रकाश से उत्तेजित होकर माइक्रोवैव का संगठित बीम पैदा कर सकते हैं. इन्हें कौस्मिक-मेज़र कहते हैं.

कुछ ऐसा ही मंगल (मार्स) और शुक्र (वीनस) गृह के वायुमण्डलों में होता है. इन गृहों के वायुमण्डल में अधिकतर कार्बन डाई-ऑक्साइड है. वायुमण्डल के ऊपरी हिस्से में उपस्थित कार्बन डाई-ऑक्साइड सूर्य के प्रकाश से उत्तेजित होकर इंफ्रा-रेड किरणों के संगठित बीम की रचना करता है. सच तो यह है कि इस तरह के कार्बन डाई-ऑक्साइड लेज़र आजकल पृथ्वी पर बनाये जा रहे हैं.

अंतरिक्ष में पाये जाने वाले मेजर और लेजर उतने शक्तिशाली नहीं होते जितने हम पृथ्वी पर फैक्ट्री या प्रयोगशाला में बना सकते हैं. अंतरिक्ष में पैदा हुए विकिरण के संगठित-बीम विभिन्न दिशाओं में चले

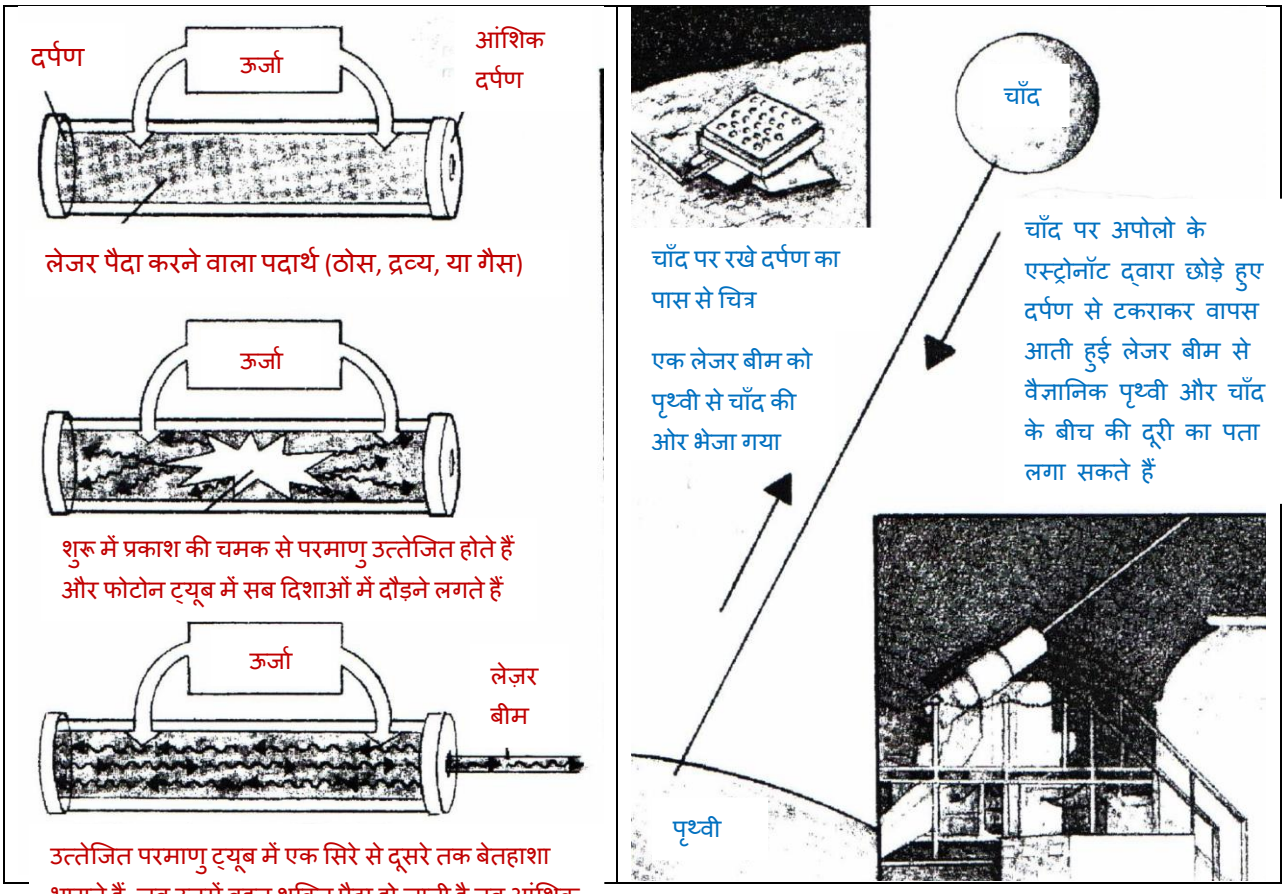

लेजर का खगोलशास्त्र में उपयोग

जाते हैं. यही कारण था कि वैज्ञानिकों को इनका पता मुश्किल से लगा और तब तक न लगा जब तक उन्हें यह समझ आई कि आखिर वो देखना क्या चाहते हैं.

पृथ्वी पर बनाये लेज़र में संगठित-प्रकाश के बीम को एक दिशा में जाने की प्रवृति दर्पणों के प्रयोग से नियंत्रित की जाती है. ऐसे दर्पण अंतरिक्ष के वायुमण्डल और बादलों में नहीं होते! जिस ट्यूब में लेज़र बनायी जाती है उसके दोनों सिरे बढ़िया से चमकाकर दर्पण जैसी सतह के बना दिये जाते हैं. प्रकाश-बीम के फोटोन ट्यूब के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सीधी रेखा में टकराकर वापस आते हैं. रास्ते में और फोटोनों को इकट्ठा करते हुए उनकी ऊर्जा बढ़ती जाती है.

अगर कोई फोटोन बाकी फोटोनों के चलने की दिशा से थोड़ा सा भी अलग हो तो वह शीघ्र ही ट्यूब के सिरे में समा जायेगा या बाहर निकल जायगा. अगर बाहर से कोई फोटोन ट्यूब के एक सिरे से अंदर पहुँच जाय और वह गलत दिशा में चल रहा हो तो वह ट्यूब के दूसरे सिरे से बाहर निकल जायगा.

लेज़र प्रकाश का एक अत्यंत केन्द्रित बीम है. ट्यूब के एक सिरे की दर्पण जैसी सतह केंद्र पर पारदर्शी होती है. और जब लेज़र बीम प्रचण्ड स्थिति में पहुँच जाता है (जो कि तुरंत ही सम्भव है) तो वह ट्यूब के इस सिरे से तेजी से बाहर निकलता है.

लेज़र बीम को इतना केन्द्रित किया जा सकता है कि वह दस-लाख मील चलने के बाद भी अगर कॉफी के बर्तन पर पड़े तो कॉफी को गरम कर सकता है. १९६२ में एक लेज़र बीम ३८३० लाख मीटर दूर चाँद तक पहुँच सकी. इतनी दूरी तय करने पर भी लेज़र अपना फोकस सिर्फ २-मील के दायरे में खो सकी. अब हम लेजर के फोकस को और भी अच्छा रख सकते हैं. १९६९ में खगोलयात्री (astronaut) चाँद पर एक दर्पण छोड़ कर आये. अब पृथ्वी से भेजी लेज़र बीम चाँद पर रखे दर्पण से टकराकर वापस पृथ्वी पर आ सकती है. वैज्ञानिक पृथ्वी से चाँद की दूरी लेज़र बीम के जाने और वापस आने में लगे समय से पता लगा सकते हैं.

५. लेज़र के प्रयोग

जब मेज़र और लेज़र का आविष्कार हुआ तो ऐसा लगा था कि इनका उपयोग सिर्फ वैज्ञानिक ही कर पायेंगे. आम लोगों के लिये इनका कोई उपयोग नहीं. परन्तु यह आविष्कार बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ.

लेज़र से संगठित-प्रकाश कम-या-ज्यादा मात्रा में पैदा किया जा सकता है. सेमीकंडक्टर-चिप सूक्ष्म लेज़र बीम पैदा कर सकते हैं जिन्हें सुपर-मार्केट में वस्तुओं पर लगे बार-कोड को पढ़ कर उनके दाम बताने के काम लिया जाता है. यह बीम इतनी कमजोर होती है कि मुश्किल ही से दिखाई देती है. इसकी शक्ति १/१००० वाट - घर में लगे नाइट-बल्ब की शक्ति का एक-हजारवां हिस्सा - के लगभग होगी.

बहुत शक्तिशाली लेज़र भी बनाना संभव है. परन्तु इसकी प्रचण्ड-शक्ति को तुरंत शीघ्रता से प्रयोग करना पड़ेगा. कुछ सेकिंडों के लिए बीस-लाख वाट की संगठित प्रकाश की लेज़र बीम पैदा की जा सकती है. और तो और १०-करोड़-करोड़ वाट की लेजर बीम भी पैदा की सकती है परन्तु यह एक सेकिण्ड के १००-करोड़वें हिस्से में ही खत्म हो जायगी. ये असाधारण शक्ति की लेज़र केवल वैज्ञानिकों के काम की है या फिर इनका प्रयोग शस्त्र के रूप किया जा सकता है.

वास्तव में लेज़र बनाने में जितनी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, उससे कहीं कम ऊर्जा लेज़र से मिलती है. जितनी ऊर्जा मॉलीक्यूलों को उत्तेजित करने में लगती है उसका एक छोटा सा अंश, लगभग २०% ही, लेज़र बीम के रूप में प्राप्त होता है. शेष ८०% ताप बनकर नष्ट हो जाती है. आप शायद यह सोच रहे होंगे कि फिर लेज़र बीम का लाभ क्या यदि उसे पैदा करने में ८०% ऊर्जा व्यर्थ हो जाय? इसका उत्तर है: लेजर ऐसे काम कर सकती है जो और किसी तरह सम्भव नहीं. अतः व्यर्थ हुई ऊर्जा एक दम बेकार नहीं!

उदाहरण के लिए, चूंकि लेज़र बीम संगठित है, उसे एक बारीक बिंदु पर केन्द्रित किया जा सकता है. साधारण प्रकाश को ऐसा करना संभव नहीं क्योंकि प्रकाश की लहरें सब तरफ भागती हैं. लेज़र बीम को १००० नैनोमीटर व्यास के छोटे से धब्बे पर केंद्रित किया जा सकता है जो कि प्रकाश की लहर की चौड़ाई से केवल दुगना है. लेज़र की सारी शक्ति को एक बारीक बिंदु पर केंद्रित कर सकने के कारण उस जगह का तापमान बहुत बढ़ जाता है. इस लिए लेज़र का उपयोग हम कैंची की तरह चीजों को काटने के लिए कर सकते हैं.

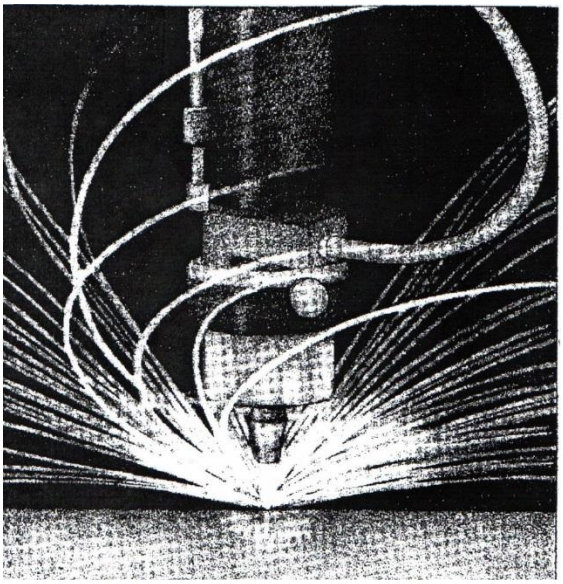

धातु काटता हुआ कार्बन डाइ-ऑक्साइड लेजर

कम शक्ति की लेज़र कागज और रबड़ काटने के लिए उपयोग की जा सकती है. थोड़ी और शक्तिशाली लेज़र प्लास्टिक या लकड़ी में छेद कर सकती है और काट भी सकती है. और भी शक्ति की केन्द्रित लेज़र जहाँ भी पड़ेगी उस बिंदु को बहुत गर्म कर देगी. यहाँ तक कि अगर वह धातु पर पड़े तो उसे पिघलाकर उसके आर-पार भी जा सकती है. केन्द्रित लेज़र बीम आरी या टॉर्च की तुलना में धातु को बहुत जल्दी और सफाई के साथ काट सकती है. हालाँकि लेज़र पैदा करने में ८०% ऊर्जा व्यर्थ जाती है, फिर भी धातु को काटने में लेज़र के प्रयोग से, सब मिलाकर, कम ऊर्जा का इस्तेमाल होता है.

लेज़र का प्रयोग बहुत नाजुक कामों में भी किया जा सकता है. लेजर बीम को एक क्षण के लिये, सेकिण्ड के कुछ अंशों तक, एक बिंदु पर केंद्रित किया जाता है. वह बिंदु बहुत गर्म हो जाता है. परन्तु यह इतने कम समय के लिए होता है कि ताप को आस-पास फैलने का समय नहीं मिलता. उदाहरण के तौर पर, लेजर का उपयोग कर टाइप-राइटर की स्याही मिटा कर गलती दूर करने का यंत्र बनाया जा सकता है. यह यंत्र लेजर के द्वारा टाइप-राइटर की स्याही को इतनी शीघ्रता से जला डालेगा कि उसे कागज को झुलसाने का समय ही नहीं मिलेगा. स्वाभाविक है कोई लेजर से मिटाने के यंत्र का प्रयोग टाइप-राइटर की स्याही मिटाने के लिये क्यों करेगा जबकि यह काम एक साधारण रबड़ या सफेद पेण्ट कर सकता है. यह उदाहरण सिर्फ यह दिखाने के लिये कि लेजर क्या क्या कर सकता है दिया गया है.

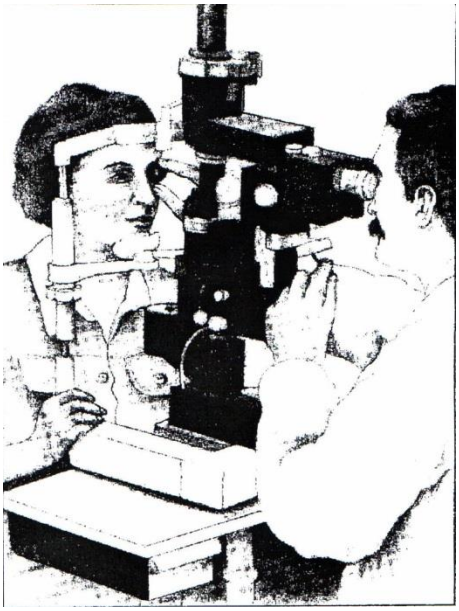

नेत्र चिकत्सा में लेजर का प्रयोग

लेज़र का प्रयोग मनुष्य के शरीर के ऊपर भी किया जा सकता है. उदाहरण के तौर पर अगर आँख का रेटिना ढीला होने लगे तो आप अंधे हो सकते हैं. आँख की पुतली को पार करती हुई लेज़र की बीम एक क्षण में रेटिना को फिर से आँख के पीछे के हिस्से पर चिपका सकती है -- और दाग भी इतना छोटा होगा कि इससे दिखाई देने में कोई परेशानी भी न होगी. यह सब इतनी शीघ्रता से होता है कि लेज़र से पैदा हुआ ताप आँख को कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाता.

लेज़र का प्रयोग मुद्रण (प्रिंटिंग) के लिए भी किया जा सकता है. शुरू-शुरू में कम्प्यूटर, टप-राईटर की तरह, स्याही के रिबिन पर अक्छरों को जोर से पीट कर कागज पर छापते थे. इससे काफी शोर तो होता ही था, अक्छरों की बनावट भी बहुत अच्छी न हो पाती थी. लेजर प्रिंटर में, लेजर अक्छरों को कागज पर छापती है -- तेजी के साथ और बिना आवाज किये. सब कम्प्यूटरअंत में लेजर-प्रिंटर का उपयोग करने लगेंगे. मेरा कम्प्यूटर भी!

लेजर का सबसे आम उपयोग आवाज पैदा करने में किया जा रहा है. अब तक आवाज को समतल डिस्कों पर रिकॉर्ड किया जाता है. संगीत या आवाज से हिलती हुई सुईं मुलायम-डिस्क पर गड्ढा (ग्रूव, groove) बनाती है. डिस्क को सख्त करने के बाद, एक दूसरी सुईं उस गड्ढें में चल कर वैसा ही कम्पन पैदा करती है जैसा डिस्क को बनाते समय किया गया था. इसका अर्थ है कि पहली वाली ध्वनि फिर से पैदा की जा सकती है. इस कम्पन को एम्प्लीफायर के जरिये फिर से आवाज या संगीत के रूप में सुना जा सकता है. समस्या यह है कि धीरे-धीरे सुईं घिसने लगती है और उसे बार-बार बदलना पड़ता है. चूंकि सुईं खांचे (groove) में चलती है, हमें उसके घिसने की आवाज भी सुनाई देती है.

अब ध्वनि की लहरों को चमकदार डिस्क पर छोटे-छोटे काले धब्बे के स्वरुप (पैटर्न pattern) में छाप दिया जाता है. ये धब्बे इतने छोटे होते हैं कि हमें दिखाई भी नहीं देते. सेमी-कंडक्टर लेजर से निकली एक दुर्बल इंफ्रा-रेड किरण इन धब्बों के स्वरुप को पढ़ कर उन्हें ध्वनि की लहरों में बदल देती है. इस तरह डिस्क को सुईं छूती ही नहीं -- और हम बिना किसी घिस-घिस के शोर के शुद्ध संगीत और आवाज का आनंद उठा सकते हैं. इसका एक लाभ और है. अब हम एक छोटी सी डिस्क में बहुत सारा संगीत भर सकते हैं. इस तरह की डिस्क पुराने रिकार्डों की तुलना में बहुत छोटी होती है और उन्हें कॉम्पैक्ट-डिस्क (सीडी) कहा जाता है. अब सीडी, पुराने जमाने के रिकॉर्डिंग के तरीके को शीघ्र बदल रहा है.

लेजर का एक और महत्वपूर्ण उपयोग है -- संदेश भेजने में. बहुत सालों तक संदेश भेजने के लिए रेडियो-वेव का प्रयोग किया जाता था. विभिन्न रेडियो और टीवी स्टेशन एक ही समय पर प्रोग्राम प्रसारित कर सकते हैं क्योंकि हर प्रोग्राम अलग-अलग वेवलेंग्थ पर प्रसारित किया जाता है. आप अपने घर पर रखे रेडियो या टीवी पर बटन घुमाकर जिस वेवलेंग्थ के प्रोग्राम को चाहें सुन और देख सकते हैं और जिन्हें न चाहें छोड़ सकते हैं.

रेडियो और टीवी स्टेशनों के प्रोग्रामों के लिये इस्तेमाल की जाने वाली वेव-लेंग्थों के बीच थोड़ा सा गैप छोड़ना पड़ेगा जिससे दो प्रोग्रामों की वेव-लेंग्थ एक दूसरे में न मिल सकें और उलझन पैदा हो. इसका मतलब यह है कि घर के टीवी और रेडियो पर कुछ सीमित नंबर के ही प्रोग्राम देखे जा सकते हैं.

वेव-लेंग्थ जितनी छोटी होगी उतने ही ज्यादा प्रोग्राम एक सीमित दायरे (रेंज) में प्रसारित किये जा सकते हैं. उदाहरण के तौर पर प्रकाश की लहरें, रेडियो-वेव से एक-करोड़ गुना छोटी होती हैं. अतः वेव-लेंग्थ की एक सीमित रेंज में जितने प्रोग्राम रेडियो-वेव पर प्रसारित किये जा सकते हैं, उससे करोड़ों ज्यादा प्रोग्राम प्रकाश की लहरों द्वारा प्रसारित किये जा सकते हैं.

परन्तु एक समस्या है. रेडियो-वेव वर्षा, धुंध, बादलों, पेड़ों, दीवालों आदि को पार कर आगे जा सकती है. प्रकाश के लिए यह सम्भव नहीं. रेडियो-वेव ऊपरी वायुमण्डल की सतह से टकराकर वापस लौटकर पृथ्वी की गोलाई के साथ-साथ चलकर दूर तक पहुँच सकती हैं. प्रकाश की किरणें सीधी रेखा में चलती हैं और वे पृथ्वी की गोलाई से दूर भाग जाती हैं.

अगर हम अंतरिक्ष में उपस्थित सेटेलाइट को लें तो वहाँ तो उसके रास्ते में कोई विघ्न नहीं होगा, प्रकाश की किरण को रोकने के लिए कोई ठोस वस्तु न होगी, और न ही प्रकाश की किरणों को पृथ्वी की गोल सतह पर मुड़ने की आवश्यकता. एक दिन अंतरिक्ष में बसे लोग एक दूसरे से लेजर के जरिये करोड़ों वेव-लेंग्थों का प्रयोग कर एक दुसरे को संदेश भेज सकेंगे और संपर्क स्थापित कर सकेंगे.

ऐसा हम पृथ्वी पर भी कर सकते हैं परन्तु रेडियो और टीवी के लिए नहीं जिनमें विकिरण की किरणों को हवा से गुजरना पड़ता है. परन्तु टेलीफोन की बात कुछ और है.

टेलीफोन पर बात करने के लिए बिजली की करेण्ट तांबे के तारों द्वारा प्रवाहित होती है. केबल के माध्यम से विभिन्न संदेश एक जगह से दूसरी जगह भेजे जा सकते हैं. यही काम हम प्रकाश की किरणों को शीशे के पतले-लम्बे रेशों (फाइबर) के माध्यम से भेज कर भी कर सकते हैं. अगर हम लेजर किरणों का प्रयोग करें तो इन ऑप्टिकल-फाइबर के माध्यम से सैंकड़ों, हजारों संदेश एक साथ भेज सकते हैं.

तांबे की अपेक्षा काँच ज्यादा सस्ता है और संगठित प्रकाश की किरणें बिजली के करेंट की अपेक्षा कहीं ज्यादा संख्या में संदेश ले जा सकती हैं. आजकल टेलीफोन सेवा के लिए एक शहर से दूसरे शहर

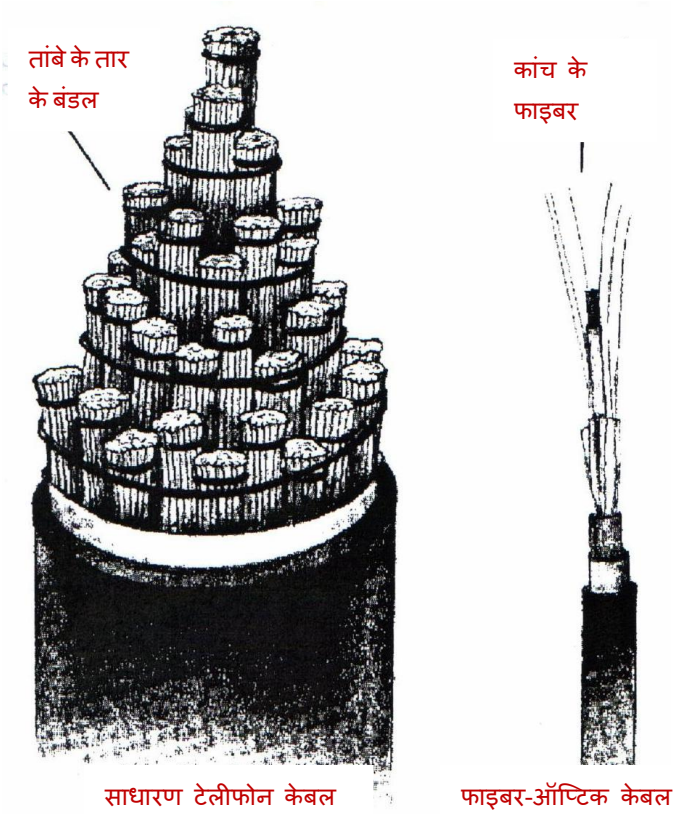

साधारण टेलीफोन केबल और
फाइबर ऑप्टिक्स केबल की तुलना

फाइबर-ऑप्टिक्स की केबल का प्रयोग किया जा रहा है. सन १९८८ के अंत में अटलांटिक-महासागर के तले पर एक सिरे से दूसरे तक फाइबर-ऑप्टिक्स की केबल बिछा दी जायगी.

फाइबर-ऑप्टिक्स द्वारा शरीर के अंदर जहां प्रकाश की किरणों को ले जाने की जरूरत हैं वहां ले जाया जा सकता है.

१९८९ में कुछ खास तरह के कैंसर का उपचार करने के लिये डाक्टर लेजर का प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं. पहले रोगी को फोटो-सेंसिटिव दवाई -- जो प्रकाश के प्रभाव को सोखले - दी जाती है. दो-तीन दिन बाद, जब दवाई का असर सारे शरीर में हो जाय, एक पतला ऑप्टिकल-फाइबर शरीर में डालकर ट्यूमर में घुसाया जाता है. दवाई प्रकाश को सोख कर शक्तिशाली परमाणु पैदा करती है जिससे ट्यूमर तो खत्म हो जाता है पर उसके आस-पास के स्वस्थ जीवकोषों (सेलों) पर कोई असर नहीं होता.

लेजर किरणें फोटो खीचने की कला में भी काफी उपयोगी सिद्ध हुईं. साधरण तौर पर फोटो खीचनें में प्रकाश की किरण जिस वस्तु की फोटो लेनी हो उस से टकराकर फोटो-फिल्म पर पड़ती है. जहां ढेर सारा प्रकाश फिल्म पर पड़ता है उस जगह फिल्म काली पड़ जाती है. जहां कम प्रकाश पड़ता है, वहां फिल्म कम काली पड़ती है. इस तरह फिल्म पर अँधेरे-उजाले के आकार बन जाते हैं. फिल्म को डेवलप कर हम फोटो छाप लेते हैं. ये फोटो एक दम समतल (फ्लैट) होते हैं -- उनमें कुछ भी तीन-आयाम (थ्री-डाइमेंसन) में दिखाई नहीं देता.

मानलीजिये प्रकाश के बीम को दो भागों में बांटा जाय. एक भाग उस वस्तु से टकराये जिसका फोटो खींचा जा रहा है. दूसरा भाग एक दर्पण से प्रतिबिंबित (रिफ्लेक्ट) होता है. प्रकाश के दोनों बीम एक दूसरे से फिर मिलते हैं. ये मिलकर एक खिचड़ी-सी बनाते हैं क्योंकि एक बीम वस्तु से टकराकर छितरा हुआ है जबकि दूसरे में कोई बदलाव नहीं आया है.

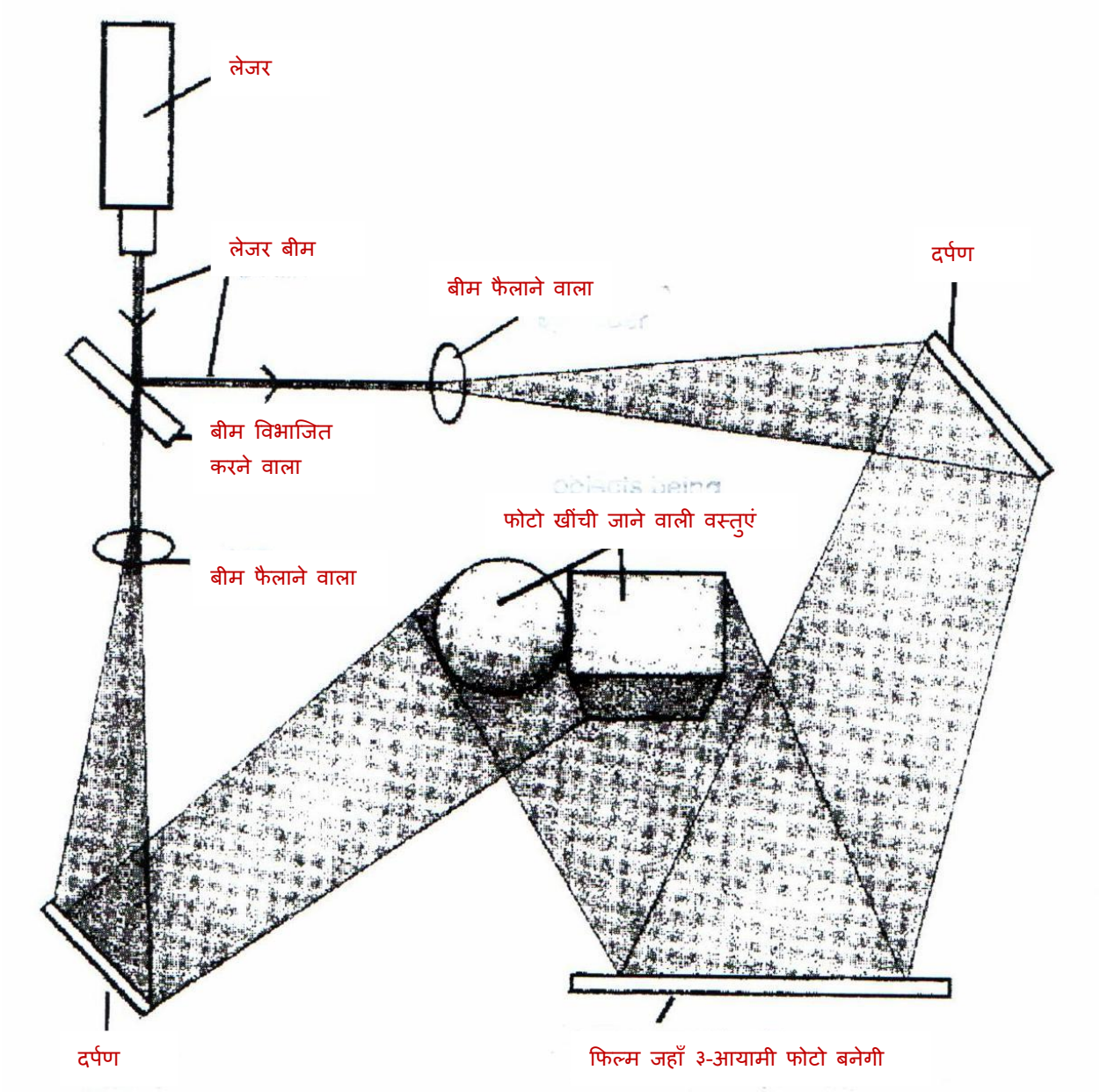

होलोग्राफ बनाने का तरीका

अगर उस जगह जहां दोनों बीम मिलकर खिचड़ी-सी बन जाते हैं, एक फोटो फिल्म रख दी जाय तो उस पर बिना किसी अर्थ का धुंधला सा कोहरा छप जायगा. अगर अब उस धुँधली फिल्म पर प्रकाश डाला जाय तो प्रकाश की किरणें उन दोनों बीम की लहरों की शक्ल अपना लेती हैं और हवा में एक चित्र बनाती हैं. यह चित्र ३-आयामी होता है और एक दम असली वस्तु सा लगता है. इस चित्र को हॉलोग्राफ कहते हैं.

हॉलोग्राफ जिस सिद्धांत पर आधारित है उसकी खोज १९४७ में हंगरी में पैदा हुए एक ब्रिटिश वैज्ञानिक डैनिस गबोर (Dennis Gabor १९००-१९७९) ने की. २४ साल बाद १९७१ में इस खोज के लिए उन्हें

नोबेल पुरुस्कार मिला. इतना समय इस लिए लगा क्यूंकि शुरू में हॉलोग्राफ बनाना असंभव था. साधारण प्रकाश की किरणें फोटो फिल्म पर बनी खिचड़ी-सी छवि से साफ़-सुधरी फोटो न बना सकी. लेजर के आविष्कार ने हॉलोग्राफ बनाना सम्भव किया. १९६५ में पहला हॉलोग्राफ दो अमरीकी ऐमेट लीथ (Emmet Leith) और जूरिस उप्टनिक्स (Juris Upatnieks) ने बनाया.

हॉलोग्राफ का अभी तक कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है. शायद एक दिन हम अपनी मेज पर रखे टीवी पर ३-आयाम में फुटबॉल मैच या संगीत का प्रोग्राम देख सकेंगे जो इतना असली लगेगा जैसे कि उन्हें हम सचमुच में देख रहे हों. सिवाय इसके कि हम टीवी में देखे जा रहे चित्रों में अपना हाथ न घुसा पायेंगे!

लेजर के अन्य प्रयोग भविष्य में अभी बहुत दूर हैं. वैज्ञानिक हाइड्रोजन परमाणुओं को हीलीयम परमाणुओं से जोड़ (फ्यूज) कर ऊर्जा बनाना चाहते हैं. इस तरह के फ्यूजन-रिएक्टर साधारण न्युक्लीअर-रिएक्टर से कहीं ज्यादा ऊर्जा पैदा कर सकेंगे. फ्यूजन-रिएक्टर बहुत कम रेडियो-धर्मी (रेडियो-एक्टिव) विकिरण पैदा करेंगे जिससे दुर्घटना होने की संभावना भी कम होगी. साधारण न्युक्लीअर-रिएक्टर में प्रयोग होने वाले ईंधन की अपेक्षा फ्यूजन-रिएक्टर में प्रयोग होने वाले परमाणु भी आसानी से मिलते हैं.

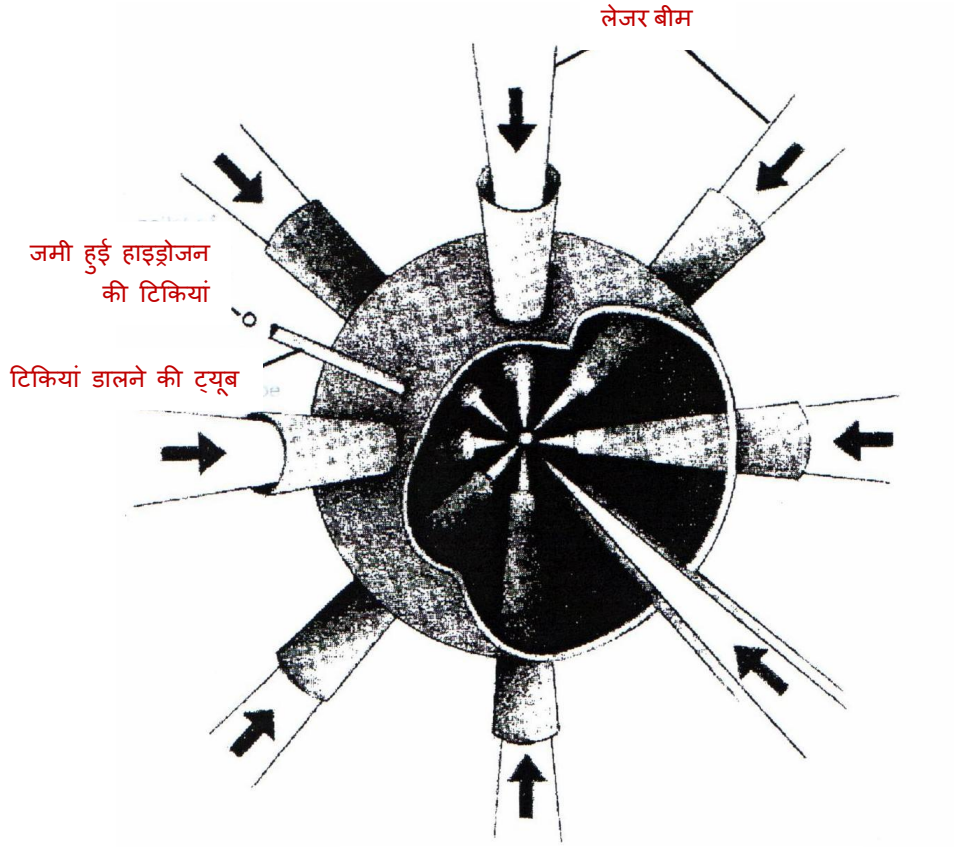

प्रयोगशाला में बना एक फ्यूजन-रिएक्टर

अतः फ्यूजन-रिएक्टर का ईंधन करोणों साल तक मिलता रहेगा!

परेशानी यह है कि जब तक हाइड्रोजन को बहुत गर्म न किया जाय और उसे उस तापमान पर बहुत देर तक न रखा जाय तब तक फ्यूजन शुरू ही न हो सकेगा. वैज्ञानिक पिछले ४०-साल से यही करने की कोशिश कर रहे हैं. परन्तु अभी तक सफल न हो सके.

फ्यूजन का एक तरीका है -- जमी हुई हाइड्रोजन का प्रयोग करके. जमी हुई हाइड्रोजन के एक छोटे टुकड़े पर कई दिशा से लेजर का प्रहार किया जाय. जिससे उसका तापमान करोणों डिग्री पहुँच जायगा. साधारण तौर पर गर्म हाइड्रोजन गैस बनकर लुप्त हो जाती है. परन्तु लेजर के प्रहार से हाइड्रोजन का तापमान एक सेकिण्ड के भी थोड़े से अंश में करोणों डिग्री पहुँच जाएगा और उसे लुप्त होने का समय ही नहीं मिलेगा बल्कि उसका फ्यूजन हो जायगा.

परन्तु ऐसा अभी तक संभव हो नहीं सका है. हमें आवश्यकता है बहुत शक्तिशाली लेजर की. वैज्ञानिक इस समस्या पर काम कर रहे हैं.

वैज्ञानिक ऐसे तरीके पर भी काम कर रहे हैं जिससे अंतरिक्ष में लेजर द्वारा न्युक्लीअर-बॉम्ब से लदी दुश्मन की मिसाइल को गिराया जा सके. कौन जानता है ऐसा वास्तव में सम्भव होगा कि नहीं. परन्तु मिसाइल इतनी तेजी से अंतरिक्ष में चलती है कि कम्प्यूटर से नियंत्रित लेजर बीम ही उसे गिरा सकती है.

सोचिये तो कितने आश्चर्य की बात है! लेजर कितनी उपयोगी है और भविष्य में यह क्या क्या और कर पायेगी. और 30 साल पहले लेजर का किसी ने नाम भी न सुना था.

====== समाप्त=====